International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232, Impact Factor: RJIF 5.22
www.hindijournal.com
Volume 3; Issue 4; July 2017; Page No. 03-06

वर्तमान परिवेश में नाथ साहित्य की प्रासंगिकता का अनुशीलन

डॉ0 सत्येंद्र प्रकाश

हिन्दी विभाग, शास. स्ना. महाविद्यालय, टीकमगढ, मध्य प्रदेश, भारत।

सरांश

वर्तमान वैश्विक समाज एक ओर तो सफलता के नित नए शिखर छू रहा है परन्तु दूसरी ओर यह समाज में फैली कुरीतियों, आर्थिक शोषण, भ्रष्टाचार, भूख–प्यास, गरीबी, रंगभेद, ऊँच–नीच की दुर्भावना आदि से भी अछूता नहीं हो सका है। अतः नाथों ने अपने समय के समाज के कल्याण के लिये जो कुछ कहा, वह आज के पतन की ओर प्रवृत्त समाज के लिये भी उपयोगी है। उनकी वाणियों की जितनी उपादेयता और प्रासंगिकता तत्कालीन समय में थी, उससे कहीं ज्यादा वर्तमान समय में है। यदि प्रत्येक व्यक्ति नाथों द्वारा निर्दिष्ट सत्य तथा दर्शन का आचरण करे तो वर्तमान समाज की अनेक समस्याओं का समाधान संभव हो सकता है। जन मानस के संताप को दूर करने वाली नाथों की पियूष्वर्षी वाणी का तत्कालीन समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा और उन्होंने आपनी वाणियों से आने वाली पीढ़ियों को अजस्र प्रेरणा प्रदान की। नाथों की वाणियाँ धार्मिक, जातीय पाखण्ड तथा शासकों के दमनचक्र के विरोध के परिणामस्वरूप कही गयी थी। आज भी यह भेदभाव, शोषण तथा शासकीय दमन चक्र खत्म नहीं हुआ है। वर्तमान शोषण एवं आतंक पर टिकी व्यवस्था का हर विरोधी नाथ कवियों की वाणियों एवं विचारों से ऊर्जा एवं प्रकाश ग्रहण करता है। नाथों की अपरिग्रह, इन्द्रिय–निग्रह, धन–वैभव की नश्वरता, सादा जीवन, संयमित जीवन, परोपकारिता, दया, भ्रातृत्व आदि की प्रेरणाप्रद वाणियाँ बहुत मौंजूद हैं, जिन्हें जीवन में आचरित करने से ही आर्थिक शोषण, भ्रष्टाचार, भूख–प्यास, गरीबी, ऊँच–नीच की दुर्भावना पर नियंत्रण किया जा सकता है और तभी मनुष्य मात्र का कल्याण सम्भव है।

माया बंधन से मुक्ति हेतु नाथों ने कहा है कि –

स्वामी जी कौण परचै माया मोह छुटे, कौण परचै शशि सूर फूटे।
कौण परचै लागे बंध, कौण परचै अजराबर कंध।।
अबधु मन परचै माया मोह छूटै, पवन परचै शशि घर फूटै।
कौण परचै लागै बंध, गुरू परचै अजरावर कंध।।
स्वामी जी कौण पेड़ बिन डाल, कौण पंख बिन सुआ।
कौण पाल बिन नार, कौण बिन कोल मुआ।।
अबधु पबन पेड़ बिन डाल, मन पंख बिन सुआ।
धीरज पाल बिन नार, निंद्रा बिन काल मुआ।।

मूल शब्दः नाथ, विकृतियाँ, मोह–माया, असमानता, परिस्थितियाँ

प्रस्तावना

नाथ संप्रदाय के आविर्भाव काल में वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, शैव मत, पाशुपत, कापालिक, कश्मीरी शैव, वीर शैव एवं रसेश्वर मत आदि अनेक धर्म एवं मत थे। शाक्त मत का एक साधन पंथ वाममार्ग था। इन सभी पंथों में कालांतर में काफी विकृतियां आ गई थीं। भक्ति का अभ्युदय तो हुआ परन्तु हमारे इस भक्ति मार्ग की तत्कालीन रूढ़िवादी धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक परिस्थितियो के कारण वह दशा एवं दिशा नहीं रही जो होनी चाहिए थी, बल्कि दोनों ही अपने विकृत स्वरूप में जन–मानस के सामनें थी। तब ऐसे में प्रथमतः गुरू गोरखनाथ नें इस विकृत भक्ति से मुक्ति का प्रयास प्रारंभ किया, जिसके परिणाम स्वरूप नाथ संप्रदाय का उद्भव हुआ। गोरखनाथ की सारग्रही दृष्टि नें तत्कालीन साधना, संप्रदायों के सार्थक, उपयोगी अंगों एवं तत्वों को संग्रहित कर एक ऐसे योगपरक भक्ति मार्ग की प्रवर्तन किया जिसमें साधना की पवित्रता, चरित्र की परमोच्चता, संयमपूर्ण जीवन की शक्तिमत्ता, सामाजिक कुरीतियों एवं आडंबर रहित जीवन की महिमा का उद्घोष किया। अंधविश्वास, कुरीतियों, आडंबरों, पाखण्डों एवं शोषण के विरूद्ध संघर्ष करनें के कारण समाज में तिरस्कृत, पिछड़े एवं निम्न वर्गीय लोगों को भी इनकी वाणी नें एक सहारा प्रदान किया। नाथ संप्रदाय की वाणियों द्वारा फैला हुआ ज्ञान आंतरिक स्वाधीनता और बाह्य स्वाधीनता पर आधारित था। आंतरिक स्वाधीनता दृष्टि से अपनी सोच समझ और इंद्रिय संयम आदि द्वारा कछुए की भांति अपनें को समेटनें की सिद्धि था तो बाह्य स्वाधीनता कार्यव्यवहार की स्वतंत्रता तथा संयम था। महात्मा बुद्ध से शंकाराचार्य और गोरखनाथ से लेकर कबीर आदि ने अंर्तबाह्य स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया है। इसके लिए हुए आंदोलनों की पृष्ठभूमि में सहजिया सिद्धों, जैनों तथा नाथ योगियों द्वारा किये गए आंदोंलन थे। इस आंदोलन में विविध सुधारवादी आंदोलनों से बहुत कुछ लेकर तथा उनमें कुछ जोड़कर भक्ति आंदोलन का प्रवाह चला। इतना बड़ा आंदोलन भारत में दूसरा कोई नहीं हुआ। इसके मूल में भक्ति साधना तो थी ही परन्तु इसके साथ–साथ तत्कालीन राजसत्ता, सामाजिक विरोधों के प्रति प्रतिरोध भी था।

वर्तमान नीतियों के चलते आज गरीब और भी गरीब होता जा रहा है और अमीर की अमीरी आसमान छू रही है। उसने सुख सुविधाओं का अम्बार लगा रखा है। इतनी आर्थिक असमानता शायद पहले कभी नहीं थी। धन की भूख आज इतनी बढ़ गयी है कि आदमी तुरन्त धनी बनने की मानसिकता के चलते अच्छे बुरे सभी कार्य कर रहा है। यों तो हर

क्षेत्र में आचरण की भ्रष्टता दिखायी देती है, किन्तु आर्थिक भ्रष्टाचार का वजूद देखते बनता है। आज भ्रष्टाचार का अर्थ ही हो गया है – आर्थिक गबन, घोटाला, रिश्वत। डॉ. सुभाष कश्यप ने लिखा है – ''सारी व्यवस्था क्षत विक्षत हो गयी, टूट फूट गयी। भ्रष्टाचार और लूट खसोट के होड़ में सभी दलों के नेताओं ने अपनी तिजोरियां भरी, विदेशी बैंकों के खातों में भारी रकमें जमा कीं,

घोटाले पर घोटाले किये, अपनी भावी पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित किया और जब देश दिवालियेपन के कगार पर आ खड़ा हुआ तो अपने खर्चे और ऐशो आराम कम करने के बजाय राष्ट्र की अस्मता को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और अमरीकी आकाओं के हाथों गिरवी रख दिया। अपने विशाल बाजार को ही विदेशी कम्पनियों द्वारा उपभोग की सामग्रियाँ बेचने और शोषण करने के लिए मुक्त कर दिया।''[1] नाथों के समय भी आर्थिक विषमता थी और लोगों का आर्थिक शोषण किया जाता था, जिसका नाथों की वाणियों में जगह–जगह जिक्र मिलता है। यही कारण है कि उन्होंने अपने समाज में आर्थिक समता लाने के लिए अतिशय धन की इच्छा को माया कहकर निन्दा की और बताया कि
धन–वैभव किसी के साथ नहीं जाता। कई स्थान पर ऐसे प्रसंग हैं जो तत्कालीन व्यवस्था की नृशंसता पर प्रहार भी करते हैं। वस्तुतः यह नाथों की अपनी पीड़ा नहीं बल्कि आम आदमी की पीड़ा थी जो बार–बार उनका पीछा करती थी। इसके खिलाफ समाज को इकट्ठा करने के लिए उन्होंने समाज को कर्म करने की प्रेरणा दी।

'धन जीवन की करै न आस।'
तुम दमड़ी चमड़ी का संग्रह करो, गुरू का शब्द ले ले दो
जग भरो। संतोष तिलक महर करौ।

नाथ नारियों के उत्थान को लेकर भी सजग थें। नाथ स्त्रियों के दो स्वरूपों को स्वीकार करते हैं। एक जिसमें स्त्री एक गृहस्थ पुरूष की पत्नी होती है और दूसरा जिसमें साधक या ज्ञान पिपासू जो ज्ञान की खोज में है उसके संबंध में स्त्री । प्रथम स्वरूप में सम्प्रति स्त्री–पुरुष को बराबरी का दर्जा दिया गया है। नारी मुक्ति और नारी–स्वातंत्रय की दृष्टि से तो यह ठीक है मगर समानता और स्वतंत्रता को स्वच्छन्दता के रूप में नहीं लेना चाहिए। जब यह सारी मर्यादाओं को तोड़कर उच्छृंखलता की हदें छूने लगता है, तब सारा पारिवारिक ढांचा ही चरमरा उठता है। अतः दोनों को मर्यादित जीवन ही बिताना चाहिए। नाथों पर नारी विरोधी होने का आरोप लगता है जो उचित नहीं है। वस्तुतः नाथों ने उन्हीं की निन्दा की है जो तथाकथित दुराचारिणी एवं कामिनियाँ रही हैं। कामिनियों से नाथों का तात्पर्य चरित्र भ्रष्ट कुलटा स्त्रियों से ही है। वर्तमान प्रगतिशील नारी समर्थक भी ऐसी आधुनिकताओं की स्वेच्छाचारिता को नापसंद करते हैं क्योंकि समाज के स्वास्थ्य के लिए उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता है। सच तो यह है कि चरित्रवान नारियों के लिए नाथों के मन में बड़ा सम्मान था। पतिव्रता को नाथों ने वेहद सम्मान दिया है। वास्तव में सामाजिक मूल्यों के उच्चादर्शों को बनाये रखने के लिए पातिव्रत–धर्म की महत्ता आज भी प्रासंगिक है। नाथों ने ऐसी ही पथभष्टा स्त्रियों के लिए पतिव्रता होने का सन्देश दिया है।

चाम ही चाम धसंता गुरूदेव दिन–दिन छीजै काया।
धन जीवन की करै न आस, चित्त ना राखै कामिनी पास।
रांडी तज्या नपुंसिया, जोवे पुरूष तज्या नहीं नारी। कहे नाथ ए
दीनू बिनसे, धोखा की असवारी।।
बाई बावड़ी को मन नहीं दीजे, देखत दृष्टि काया तन छीजे।
कामरूपिणी देखे दुनिया देखे रूप अपारा।

द्वितीय प्रकार में जब कोई पुरूष साधनारत है तो उसे संसार के अन्य सभी व्यसनों के साथ साथ स्त्री का भी त्याग करना चाहिए क्योंकि नाथों के अनुसार स्त्री का साथ रहना शान्ति में बाधक है। उसके साथ रहने वाले पुरुष की अवस्था नदी के किनारे खड़े पेड़ की सी होती है। उसके जीवन की आशा थोड़ी ही है।''[2] काव्य भोग राक्षस है। अतः पुरुष को अकेला रहना चाहिये। एकान्त सेवा करना चाहिये, एकांकीपन नाथ पंथ का काम्य है। नाथ–पंथी का उद्देश्य है गोरख स्वरूप की प्राप्ति। देवलोक की अप्सरायें, मृत्यु लोक की स्त्रियां और पाताल लोक की नाग कन्यायें जिस गोरख को प्रभावित करने में असमर्थ है। उसने माया को मार दिया है। घर–बार को छोड़ दिया है। कुटुम्ब और भाई बन्धु त्याग दिये हैं।
नाथ–पंथी के लिये कहा जाता है कि नौ लाख पतुरियां उनके आगे नाचती हों और सहज ज्ञान वैराज्ञ का अखाड़ा उनके पीछे हों।''[3]
आज मनुष्य के सामने एक और बड़ा संकट है उसके मानवीय मूल्यों का ह्रास। नैतिकता जैसे बीते युग की बात हो गयी है। नैतिक मूल्य और चरित्र पर मनन करने के लिए वर्तमान मानव के पास समय ही नहीं है। भौतिकता की ऐसी आँधी चल रही है। जिसने सभी मानवीय मूल्यों–दया, प्रेम, परोपकार, करुणा, पर दुःखकातरता, त्याग, बलिदान, क्षमा, धैर्य, विनम्रता, सदाचरण, सात्विकता, पवित्रता आदि को उखाड़ फेंका है। वर्तमान व्यक्ति की मानसिकता में अतिशय व्यक्तिवादिता, कामुकता, धनलोलुपता, परोपकार की जगह अहंकार और अतिशय भोगवादी प्रवृत्ति ने घर कर लिया है। अब उसके जीने–मरने का यही मूलाधार बन गया है। सुभाष कश्यप लिखते हैं– ''हम सबके चरित्र गिरे हैं। जीवन में मूल्यों का ह्रास हुआ है, स्वार्थपरता, थोथा उपभोक्तावाद बढ़े हैं। देश का संकट केवल राजनीतिक व्यवस्था का नहीं, राष्ट्रीय चरित्र का संकट है। आध्यात्मिक संकट है।" आज 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये जे पीर परायी जाणे रे' सोचने कहने वाला कहीं नहीं मिलता। लेने की, लूटने की होड़ लगी है। देना कोई नहीं चाहता, सेवा नहीं, सत्ता के लिए ही राजनीति रह गयी है। आगे वे लिखते हैं– आज पैसा, कुर्सी, सत्ता, पद और अधिकारों की लड़ाई ही सब कुछ हो गयी है। पढ़े–लिखें लोग, बुद्धिजीवी, राजनेता, प्रशासक, व्यापारी, उद्योगपति, डाक्टर, अध्यापक, विद्यार्थी किसी के लिए कोई आचार संहिता, नहीं है। कोई मूल्य नहीं रह गये हैं।

लगी लै लैलीन हुए, सब खो गई खलकत।
सत् बोले सत्वादी लोग, झूठे बोलें महापापी।
देखत भाई विषया खाई, झूठा बोले मर मर जायी।।
संयम चितबो जगति अहार, निंद्रा तजो जीवन का काल।

मैनेजर पाण्डेय ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि– ''ऐसा दुख उसे ही होता है जो अपने समय और समाज के बारे में सजग होता है।'' उसी सजगता से उपजी है गोरखनाथ की कविता जो कालजीवी है और कालजयी भी। वह अपने समय में जितनी सार्थक थी उतनी आज भी है। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने ऐसी कविता को 'चिर आधुनिक' ठीक ही कहा है। आज भी नाथों का 'पढ़ाई–लिखाई' पर किया गया दो टूक भाष्य कितना सही बैठता है –

पंडित पढ़ गुण भला कहावै, जब लग हदय दया न आवै।
जब लग हदय दया नहीं आई, तब लग कहिए शुद्ध कसाई।।
तन में पोथी मन में लेखिनि, एती निज है सहै संतनि
साधन शुद्ध पाले संपति यूं कथत है गोरख जति।।

नाथों ने सारी आसक्तियों का विरोध करते हुए ह्रदय में सच्चाई एवं पवित्रता को सबसे बड़ा तप बताया। सच्चे दिल इंसान को भगवान समझिये। आज का युग नाथों के युग की अपेक्षा अधिक विचलित और भ्रमित है। आज कनक–कामिनी से बँधा मनुष्य इतना पथभ्रष्ट हो गया है कि अपने सभी धर्म–कर्म को समझना उसके लिए कठिन है। भौतिक सुख की ऐसी अंधी दौड़ का दौर इतिहास में इससे पहले कभी नहीं देखा गया। शायद इसके मूल में विश्व स्तर पर आए अति भौतिकवादी दृष्टिकोण का आग्रह रहा हो जिसके चलते मार्क्सवाद का धर्म विरोधी वैयक्तिक आग्रह भी भूलुंठित हो कहीं का

नहीं रहा। वैसे पूँजीवादी व्यवस्था तो इस सांसारिक एवं भौतिकवादी सुख की तलाश में और भी बदतर है क्योंकि वह वर्ग विशेष के हितों की पोषक है।

बैराग सारिषा न ज्ञान, निराकार सारिषा न ध्यान।
सतगुरू सरिषी न विद्या, हरि नाम सरिषी न रक्ष्यज्ञं
प्रकाश सरिषा न पण्डिता, मन सरिषा न पुछिता।।
ग्यान सरीषा गुरू न मिलिया, चित्त सरीषा चेला।
मन सरीषा मेलू न मिलिया, ताथैं गोरष फिरै अकेला।।

नैतिकता एवं सदाचरण में लोभ के लिए कोई स्थान नहीं। आज लोभरूपी मदारी समाज के सभी लोगों को बन्दर बनाकर नचा रहा है। जिसे देखो वही धन के पीछे दौड़ रहा है। अधिक से अधिक जोड़ना ही जीवन का लक्ष्य बन गया है। लोगों को इसका पता नहीं है कि लोभ ही महापाप की खान है। नाथों ने इसके मारक प्रभाव एवं घृणित स्वरूप को इस प्रकार कहा है –

सोद्यो लाकड़े ज्यूं घुण लागे, लोहे लागे काई।
बिन परतीति कहाँ गुरू कीजे, काल हूँ ग्रास्या जाई।।
संतोष ऊपर सुख नांहिं, अमृत ऊपर सिद्ध नांहिं।

वाह्य रूप से दृष्ट प्रवृत्ति वाले लोग भी पत्थरों एवं देवालयों की पूजा करते हैं, किन्तु उनमें आन्तरिक शुचिता नहीं होती। ऐसे लोग बड़े ही अहंकारी होते और अपने समान किसी को भी नहीं समझते। उनका यह अहंकार विद्या, शरीर एवं धन सभी क्षेत्रों में होता है। ऐसे ही लोगों को सन्त कवियों ने गर्व न करने की सलाह दी है।

तन मे पोथी मन में लेखनी, एती निज है सहै तंतनि।
साधन शुद्ध पाले संपत्ति, यूं कथत है गोरख जाति।।
दया ऊपर धर्म नांहि, शील ऊपर शुचि नांहि।
जप ऊपर तप नांहि, सांच ऊपर शास्त्र नांहि।

अज्ञान तथा माया मुक्ति के लिये वैराग्य की अपेक्षा है। तो सन्यास की वासना जन्म विकृति से श्राण के लिये गृहस्थ आश्रम का पालन। नाथ समाज को सहज जीवन का अर्थ क्रमशः परिवर्तित हो गया। जहां घर में निष्काम भाव से, उदासीन भाव से रहना काम्य था। वहां संसार का त्याग अपेक्षित होने लगा।[4] नाथों ने संभवतः देख पाया कि संयमित विषय–तृप्ति और अबाध इन्द्रिय–तृप्ति का अन्तर स्पष्ट रूप में नहीं देखा जा सकता। अज्ञान से मुक्ति हेतु नाथ कहते हैं कि–

स्वामी जी रात्रि होती दिन कहां ते आया,
दिन होते रात्रि कहां समाबै,
दीवा बुझाना ज्योति कहां लिया बास,
पिंड न होता तब कहां प्राण का निवास।
अबधु रात्री होती दिन सहजे आया,
दिन प्रकाशै रात्री सहज समाया।
दीवा बुझाना ज्योति निरंतर बास,
पिंड न होता तब प्राण का शुन्न निवास।।

इसके अतिरिक्त क्रोध को भी विचारकों ने षट्विकारों में ही गिना है। वैसे तो यह मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है, किन्तु विकराल रूप में लगने पर यह मनुष्य को आसुरी प्रवृत्ति का पर्याय बना देती है। सन्तों ने सदा इससे बचने की ही वकालत की है।

शब्द सारिषा न बाण, क्रोध सरिषा न पाण।
मुक्ति सरिषा न पद, रहत सरिषा न हद।।
क्रोध ऊपर अग्नि नांहि, शील ऊपर शांत नांहि।
अबधु रहबा तो हाटां बाटां, रूख वृक्ष की छाया।
तजि बातों काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया।
हसिबा बेलिबा रहिबा रंग, काम क्रोध न करिबा संग।

नाथों का विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिक तत्व है। अतः वह नैतिक है और आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त कर सकता है। नाथ अपने आपको अपनी आस्था, धारणा एवं विश्ववास को, अपने मन्तव्य को मूर्त–स्वरूप देने की चेष्टा करता है। जीवन की कटुताओं एवं निष्ठुरताओं के प्रति नाथ सदा जागरुक है। कल्पना के मोहक कुंजों में वह विवरण करने वाला नहीं। नाथों के अनुसार मानव का विशुद्ध स्वरूप ही देवत्व है। परन्तु मानवों की सबसे विकट समस्या है– मन के भटकाव की समस्या, एक सामान्य व्यक्ति का मन हमेशा विषय वासनाओं में उलझा हुआ रहता है। इस उलझाव के कारण ही व्यक्ति स्थिर नही हो पाता तथा किसी न किसी विकृति के वशीभूत हो जाता है। यह विकृति किसी भी रूप में हो सकती है जैसे अतिशय व्यक्तिवादिता, कामुकता, धनलोलुपता, परोपकार की जगह अहंकार इत्यादि, अतः किसी भी प्रकार की विकृति से बचनें के लिए नाथों द्वारा मन की शुद्धता तथा स्थिरता पर विषेश बल दिया गया है। मन को स्थिर तथा समस्त विकृतियों से बचनें के लिए गुरू की महिमा तथा गुरू की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है।
नाथों द्वारा कहा गया है कि–

स्वामीजी मन का कौण रूप, पवन का कौण आकार।
दम की कौण दशा, साधिबा कौण द्वार।
अबधु मन का शुन्य रूप, पवन का निरालंब आकार।
दम की अलेख दशा, साधिबा दसवें द्वार।।
सतगुरू सरिषी न विद्या, हरि नाम सरिषी न रक्ष्या।
प्रकाश सरिषा न पण्डिता, मन सरिषा न पुछिता।।

अनेक सन्तों ने अपना–अपना स्वतंत्र सम्प्रदाय या पंथ स्थापित किया है जो इनके जातिगत व्यवस्था के विरोध में इनके आत्म–विश्वास का द्योतक है। कदाचित् आज के मनोविश्लेषणवादी, जो व्यक्ति की हर चेष्टा में कामप्रवृत्ति या आत्महीनता की ग्रन्थि की प्रतिक्रिया का अस्तित्व सिद्ध कर देने के अभ्यस्त हैं, इन नाथों में भी ऐसी प्रतिक्रिया सिद्ध; कर सकते हैं, किन्तु हमें ऐसा प्रतीत नहीं होता। इनके इस आत्मविश्वास के पीछे आत्महीनता की प्रतिक्रिया न होकर उस विचारधारा एवं भावना का बल है जो क्षुद्र से क्षुद्र व्यक्ति में भी ब्रह्म का अस्तित्व स्वीकार करती है। सभी नाथों ने जातिवाद और वर्ग–भेद का विरोध किया। उन्होंने यह मत प्रकट किया कि कोई भी व्यक्ति चाहे वह नीच जाति का ही क्यों न हो यदि स्वच्छ हृदय से ईश्वर की भक्ति करता है तो वह सुगमता से ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। उनकी दृष्टि में न कोई ऊँचा था और न कोई नीचा। जाति–पाति जैसी कुरीति के विरोध में नाथ कहते हैं कि–

गरब न करिबा सहजै रहिबा, भणत गोरष रांब।
गुपति चक्र चलाओ हथियार, पंडित बुद्धि बहुत अहंकार।
पंडित पद गुण करै न आशा, देखि एकांत रहै निराशा।

नाथों के समय देश में हिन्दू और बौद्ध दो ही मुख्य धर्म थे और इस्लाम का आगमन हो रहा था। इन्हीं दोनों के अनुयायियों में ही

टकराव एवं संघर्ष व्याप्त था, किन्तु आज हालत और भी बदतर है। आज सिक्ख धर्म और इसाई धर्म भी शमिल हो गये है। धार्मिक विद्वेष की आग वर्तमान समाज को जला रही है और सारा राष्ट्र इसकी आंच में झुलस रहा है। कट्टर धार्मिकता की कोख से ही साम्प्रदायिकता का जन्म होता है। यह सम्प्रदाय विशेष अथवा धर्म–विशेष के अनुयायियों के मानस को विषाक्त एवं विकृत बना देती है तथा इसके प्रभाव में विषाक्त मानस वाले तत्व घृणित एवं अमानुषिक कृत्य करने से भी नहीं हिचकते।[5] आजादी के इतने वर्षों के बाद और संवैधानिक धर्मनिरपेक्षता की अर्द्धशती के बाद भी हमारे राष्ट्रीय जीवन में साम्प्रदायिकता का जहर व्याप्त है जिसकी परिणति हिंसक दंगों के रूप में होती रहती हैं। आज भी मन्दिर मस्जिद के प्रश्न पर सारा राष्ट्र साम्प्रदायिकता की गिरफ्त में आता दिखाई देता है। अयोध्या की उक्त इमारत के ध्वस्त होने के बाद भी विषाक्त पीड़ा से समाज कराह रहा है।[6] धर्म की आड़ में राजनीतिक रोटियां सेंक रहे हैं – राजनीतिक दल। इस अयोध्या मसले का समाधान अभी तक नहीं हो पाया है। इस संदर्भ में नाथमत हमारी सहायता कर सकता है। समाज में फैले हिन्दु मुस्लिम विद्वेष को दूर करनें हेतु–

हिन्दु ध्यावै देहुरा, मुसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परम पद, जहाँ देहुरा न मसीत।।

गुरू की महिमा तथा महत्व बताते हुए नाथ कहते हैं कि–

गुरू सरिषा न अलख, आप सरिषा न लख।
रहत सरिषा न अपार जोग सरिषा न सार।।
बाहर भीतर एकंकार, गुरू प्रसाद भये निधि पार
काल न मिट्या जंजाल न छुट्या, तप करि हुवा न सूरा।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुरू मिलै न पूरा।।
रहता हमारै गुरू बोलेये, हम रहता का चेला।
मन मानै तौ संगि फिरै, निंहतर फिरै अकेला।।

वर्तमान भारतीय ही नहीं बल्कि विदेशी परिवारों में विघटन तथा बच्चों में गिरते नैतिक मूल्य एक विकट और विकराल समस्या सुरसा के मुख के समान बढ़ती जा रही है। लोग चाहकर भी इससे बाहर निकलनें में अपने आपको असमर्थ पाते हैं। आज परिवार के सभी सम्बन्ध बिगड़ चुके हैं। स्वार्थ में उलझे लोग अपने से हटकर देखने में नितान्त असमर्थ दिखाई देते हैं। 'वसुधैव कुटुम्बकम' की भावना तो दूर रही सहोदर भी पराये हो गये हैं। ऐसी स्थिति में संगठित एवं आदर्श परिवार की बात अब कोरी कल्पना प्रतीत होती है। परिवार के अन्तर्गत सभी सदस्य भावनात्मक सूत्र में गहरे बंधे होते हैं। पारिवारिक विघटन तथा वृद्ध माता–पिता को घर से निकालनें अथवा उन्हे प्रताड़ित करनें पर नाथ कहते है कि–

जिन जननी संसार दिषाया, ताको ले सूते षोले।
बूढ़े होइ तुम्हें राज कमाया ना तजी मोह माया।

हिन्दू–मुस्लिम, सिक्ख–ईसाई सभी को वाह्य पूजा की जगह आन्तरिक, मानसिक पूजा करनी चाहए। वस्तुतः धर्म की विषमताओं के मूल में आज कृत्रिमता और बाह्याडम्बर ही है। इन आडम्बरों एवं कर्मकाण्डों में धर्म का उज्जवल पक्ष ढक गया है। अतः जब तक व्यक्तियों का जीवन स्वच्छ नहीं होता, तब तक सभी धर्मों हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी में सौमनस्य स्थापित नहीं हो सकता। मूर्ति पूजा तथा अन्य धार्मिक आडंबरों का विरोध करते हुए कहते है कि–

पषाणची देवली पषाणचा देव, पषाण पूजिला कैसे फीटीला सनेह।
सरजीव तैडिला निरजीव पूजिला, पापची करणी कैसे दूतर तिरिला।
तीरथि तीरथि सनान करीला, बाहर धोये कैसे भीतरि मेदीला।।

इस प्रकार उक्त समस्त अध्ययन को देखते हुए हम कह सकते हैं कि वर्तमान परिस्थितियां नाथकालीन परिस्थितियों से कोई अलग नहीं है। वर्तमान में भी वही साम्प्रदायिक उन्माद, धार्मिक पाखंड–आडंबर, अमीर गरीब के मध्य की खाई, ऊँच–नीच की लड़ाई, जन–मानस के अधिकारों का हनन, स्त्री उच्छृंखलता, शोषण, पारिवारिक विघटन, धन लोलुपता, भ्रष्टाचार और पहले के समान सत्ता की भूख। सब कुछ पहले जैसा ही तो है तो इसी कारण से नाथ संप्रदाय की वाणी, उनका मागदर्शन और दिशानिर्देशन आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ

1. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संविधान समीक्षा (पालिटिक्स इण्डिया, मासिक अगस्त, 1998 में प्रकाशित लेख), पृष्ठ 33।
2. वही, पृष्ठ 138।
3. गोरख बानी, पृष्ठ 317।
4. सं.बा.सं., भाग 2, पृष्ठ 105/2।
5. भारत की राष्ट्रीय एकता, पृष्ठ 138।
6. बाबरी मस्जिद–राममंदिर (ढाँचा 6 दिसम्बर, 1992 को ढहाया गया)।
7. उत्तर भारत की संत परंपरा, परशुराम चतुर्वेदी।
8. नाथ पंथ और भक्ति आंदोलन, भारतीय इतिहास संकलन समिति, (राष्ट्रीय संगोष्ठी अक्टूबर 2010)।
9. महायोगी गोरखनाथ एवं नाथ संतो का संत–साहित्य और समाज पर प्रभाव, योगी आदित्यनाथ।
10. नाथ संप्रदाय : उद्भव और विकास, डा के आर नजुण्डन।
11. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की तांत्रिक पृष्ठभूमि।
12. नाथ संप्रदाय और साहित्य, वेद प्रकाश जुनेजा ।
13. नाथ पंथ, शान्ति प्रसाद चंदोला।